संगीत शास्त्र ग्रन्थों में प्रतिपादित रस सिद्धान्त की चलचित्रीय संगीत पर प्रयोगधर्मिता

प्रो. पंकज माला शर्मा
संगीत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

नभ जल थल चर अचर पर छाया फिल्मी रंग,
इसी रंग में रंग बूढ़े बालक यंग।
बूढ़े बालक यंग कि अफसर बाबू लाला,
फिल्मी गीत गा रहा जुम्मा रिक्शेवाला।

हास्य कवि काका हाथरसी द्वारा रचित यह पंद्याश समाज पर फिल्मों तथा फिल्मी गीतों के प्रभाव को दर्शाता है। यूं तो भारत कला में पहले से ही प्रधान रहा है। वहीं फिल्मी गीतों के कारण विश्व में प्रसिद्ध हो गया। फिल्मों का सूत्रपात 19वीं शताब्दी में हो गया था। सन् 1913 में राजा हरिशचन्द्र नामक फीचर फिल्म बनी। वह फिल्म मूक तथा श्वेत–श्याम थी। सन् 1913 ई. में प्रथम ध्वनियुक्त फिल्मी आलमआरा बनी। 1937 ई. में प्रथम रंगीन फिल्म कृष्ण कन्हैया के नाम से प्रख्यात हुई। स्वतन्त्रता के पश्चात् अनेकानेक चलचित्रों का निर्माण हुआ। विशेषतया हिन्दी चलचित्र गीत–संगीत के द्वारा अत्यधिक प्रचलित हुए। पार्श्वगायन पद्धति के प्रचनलन के पश्चात् संगीत का स्थान दिन प्रतिदिन महत्त्वपूर्ण होता गया। फिल्मी संगीतकारों ने रागों के आधार पर गीतों की रचना की जो जनसामान्य में बहुत प्रचलित हुए। संगीत की ख्याल, ठुमरी, ध्रुवपद शैलियों का प्रयोग तथा लोक गायन शैली के प्रयोग में भी संगीतकारों ने संकोच नहीं किया। शास्त्रीय संगीत के अनेकों गायक तथा वादक कलाकारों ने भी फिल्म संगीत में अनूठा योगदान किया। आज फिल्मी गीतों का एक विपुल भण्डार प्राप्त होता है और यह प्रक्रिया निरन्तर चल रही है। यहाँ तक कि संगीत की अन्य शाखाओं जैसे शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, लोक संगीत की ही भक्ति फिल्म या चलचित्र संगीत नामक स्वतन्त्र शाखा स्थापित हो रही है। इसका कारण यह है कि फिल्मी

गीत की धुन या साहित्य सम्बंधी कुछ ऐसी विशेषताएं है जिनके आधार पर फिल्मी गीतों को अन्य गीतों से सहज ही अलग किया जा सकता है। यह बात उल्लेखनीय है कि शास्त्र ग्रन्थों, जो मुख्य रूप से संस्कृत भाषा में विरचित हैं, में प्रतिपादित संगीत के शास्त्रीय सिद्धान्तों का अनुपालन भी फिल्म संगीत में दृष्टिगोचर होता है। अनेकों ऐसे गीत हैं जिनमें शास्त्रोवत रस एवं ध्वनि के सिद्धान्त परिलक्षित होते हैं। प्रस्तुत पत्र में संस्कृत शास्त्र ग्रन्थों में प्रतिपादित रस सिद्धान्त एवं चलचित्र संगीत में उनकी प्रयोधर्मिता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

संस्कृत भाषा में रचित भरत कृत 'नाट्शास्त्र' को संगीतशास्त्र का प्रमणिक ग्रन्थ माना जाता है। यूं तो यह नाट्य पर प्रकाश डालता है लेकिन संगीत नाटय का अभिन्न अंग होने के कारण संगीत के शास्त्रीय सिद्धान्तों की भी विशद रूप से व्याख्या इसमें की गयी है। 'नाट्यशास्त्र' के छठे एवं सातवें अध्याय में रस सिद्धान्त को जो प्रतिपादन हुआ है, उसी रस सूत्र की परवर्ती आचार्यों ने कई प्रकार से व्याख्या की।[1] रसवादियों का एक सम्प्रदाय ही बन गया।[2] परवर्ती आचार्यों द्वारा रस एवं ध्वनि सिद्धान्त पर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ भी रचे। यह तो हुई आचार्य भरत की परवर्ती परम्परा। लेकिन आचार्य भरत से पूर्व भी रस सिद्धान्तों पर चिन्तन का इतिहास है। नाट्यशास्त्र के प्रारम्भ में ही इस बात का उल्लेख किया गया है कि ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गान तथा अथर्ववेद से रस ग्रहण करके नाट्यवेद की रचना की। इसे पंचमवेद या गन्धर्ववेद भी कहा जाता है।[3] इससे यह बात स्पष्ट होती है कि 'रस' तत्व का मूल रूप से चिंतन वेदों में निहित है जो कि संस्कृत भाषा में रच गये। वैदिक मन्त्रों पर स्वरांकन प्राप्त होता है वो परवर्ती संस्कृत में रचे साहित्य पर नहीं है। इसलिए वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत भेद प्रचलित हुए। वेद में साधारण रस से लेकर ब्रह्म के स्वरूप तक रस की व्याख्या की गयी हैं। 'रसो वै स' इस उक्ति में ईश्वर रस रूप ही माना है कि वह ब्रह्म साक्षात् रस रूप है।[4] परात्पर ब्रह्म जो रस रूप है, उसमें कोई विकार नहीं। वह स्वधा रूप बल तत्व है। वही सब प्रकार की सृष्टि का कारण है। जब उस परात्पर ब्रह्म का (जो रस रूप है) महामाया से संयोग होता है तो वह अव्यय ब्रह्म कहलाता है। उस अव्यय की पाँच कलायें हैं – 1. आनन्दण 2. विज्ञान, 3. मन, 4. प्राण तथा 5. वाक्। ये रस बल के कारण ही है। रस से ही आनन्द की अनुभूति होती है। जब अव्यय ब्रह्म का योगमाया से संयोग होता है तो वह अक्षर ब्रह्म कहलाता है। इस अक्षर ब्रह्म की पाँच कलायें है जो इस प्रकर है – 1. ब्रह्मा, 2. विष्णु, 3. इन्द्र (रूद्र), 4. अग्नि तथा 5. सोम। इस अवस्था में बल केवल सक्रिय नहीं होते अपितु उनका परस्पर योग

भी होता है। लेकिन ग्रन्थि निर्माण नहीं होता। पुनः अक्षर ब्रह्म तथा योगमाया का जब संयोग होता है तो वह क्षर ब्रह्म कहलाता है। इसकी पाँच कलायें 1. प्राण, 2. वाक्, 3. आप, 4. अन्न तथा 5. अन्नाद है। इस क्षर ब्रह्म की संज्ञा विश्व है। यही से सृष्टि प्रारम्भ होती है। इन्ही पाँच–पाँच के तीन पंचक तथा परात्पर ब्रह्म ये उस पुरूष की 16 कलायें है। तभी उसे षोडश कला पूर्ण कहा जाता है।[5] भगवान श्रीकृष्ण 16 कला सम्पूर्ण हैं वस्तुतः अक्षर ब्रह्म के अग्नि एवं सोम से ही क्षर रूप विश्व का निर्माण होता है। 'अग्निसोमात्मक जगत्' इस सिद्धान्त के अनुसार अग्नि में सोम की आहुति नित्य पड़ती रहती है। और सारा विश्व रसमय है।

तैतिरीय उपनिषद में रस रूप ब्रह्म की स्थापना की है तथा सामान्य जन के आनन्द से लेकर ब्रह्मानन्द आनन्द की दस श्रेणियां स्वीकार की हैं। मनुष्य विभिन्न स्तरों पर निरन्तर प्रयत्न करता हुआ ब्रह्म के आनन्द तक के स्तर में प्रतिष्ठित हो जाता है। तैतिरीय उपनिषद की रस की व्याख्या करने वाली ब्रह्मानन्द वल्ली का उल्लेख करना यहाँ अपेक्षित है। क्योंकि रस की उत्पत्ति एवं आनन्द रूप में अनुभूति इस वल्ली में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। वहाँ कहा गया है कि पहले यह संसार असत् (अविद्यमान) अर्थात् विकृति रहित ब्रह्म रूप में था। उसी से अर्थात् विकृति रहित ब्रह्म से सत् अर्थात् नामरूपात्मक दृश्यमान संसार उत्पन्न हुआ, उस असत् ने स्वयं को ही नामरूपात्मक संसार बनाया।[6] अतः वह स्वयं निर्मित कहा जाता है, वह जो स्वयं निर्मित प्रसिद्ध है वह निश्चित रूप से रस ही है।[7] इस रस को प्राप्त करके मनुष्य आनन्द निमग्न हो जाता है। यदि हृदय आकाश में रहने वाला यह आनन्द न होता तो कौन व्यक्ति अपान क्रिया को करता और कौन व्यक्ति प्राणधारण क्रिया को करता।[8] कहने का अभिप्राय यह है कि आनन्द ही मनुष्य को ब्रह्मत्व तक ले जाने वाला तथा अभय प्रादान करने वाला है।[9]

मनुष्य का आनन्द क्या है और उत्तरोतर कैसे विकसित होता है इसकी भी चर्चा की गयी है। सज्जन स्वभाव वाला नवयुवक, वेद का अध्ययन किया हुआ, उत्साही अत्यन्त दृढ़ निश्चय करने वाला और बलशाली है। उस पुरूष की धन धान्य से पूर्ण पृथ्वी हो। ऐसे पुरूष का जो आनन्द है वह एक मनुष्य का आनन्द है।[10] ऐसे जो 100 मनुष्यों का आनन्द है वह संगीत में रत मनुष्यों का और गन्धर्वों का एक आनन्द है।[11] तात्पर्य यह है कि सौ समृद्ध मनुष्यों के आनन्द के बराबर एक गन्धर्व का आनन्द है। तृतीय स्तर पर जो एक सौ गन्धर्वों का आनन्द है वह देवगन्धर्वों का एक आनन्द है।[12] ऐसे सौ देवगन्धर्वों का जो आनन्द है वह एक पितृगण का आनन्द है। चिरलोक में निवास करने वाले सौ पितरों के आनन्द है।[13] इसी प्रकार सौ अजान देवताओं के आनन्द

को एक कर्म देवता का आनन्द कहा है। सौ कर्म देवता का आनन्द को एक इन्द्र का आनन्द कहा है।[14] अगले स्तर पर सौ इन्द्र का आनन्द एक बृहस्पति का आनन्द है। सौ बृहस्पति का आनन्द एक प्रजापति का आनन्द है। एक सौ प्रजापति का जो आनन्द है वह एक ब्रह्म का आनन्द हैं।[15] अतः सामान्य मनुष्य से लेकर ब्रह्म तक आनन्द का विभिन्न स्तरों का आधार पर एकीभाव है। इसको प्राप्त करने के लिए कुछ नियमों का पालन करते हुए वेद का अध्ययन में क्रियाशील होना आवश्यक है। इसके लिये श्रोत्रियस्य तथा कामहतस्य दो शब्दों का प्रयोग किया है। वेदों का सस्वर उच्चारण होता था और सामवेद तो पूर्णतया संगीत का शास्त्रीय रूप था। ऋचा के ऊपर किया गया गान ही सामगान था जो सामवेद के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें साहित्य तथा संगीत का सुमेल है। अतः शब्द ब्रह्म और नादब्रह्म दोनों समाहित है। मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने इसी सृष्टि में रस एवं सौन्दर्य तत्व का दर्शन किया और ऋक् यजु तथा साम के रूप में अभिव्यक्त किया। सम्पूर्ण सृष्टि को देव का काव्य कहा। 'पश्य देवस्य काव्य न ममार न जीर्यति' अर्थात देखो यह परमात्मा की कला है जो न कभी मरती है और न कभी जर्जर होती है। यह प्रकृति नित नवीन है। इसी में यज्ञ का साक्षात्कार किया और सर्वहुत यज्ञ से सृष्टि निर्माण प्रक्रिया में ऋक्, यजु और साम रूपात्मक मन्त्रों की उत्पत्ति बतायी तथा उसे पृथ्वी पर यज्ञ रचाने में प्रयोग में लाये। यही यज्ञ भारतीय विद्याओं, नाटक, संगीत, वास्तु आदि कलाओं का आधाररूप थे। मन्त्रों की प्रयोगधर्मिता इन्हीं यज्ञों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यज्ञवाद का विकास धार्मिक पृष्ठभूमि में हुआ। फिर भी मन्त्र तथा उनके ऊपर किये गए गान नाना भाव और रस की अभिव्यक्ति करने वाले थे। सामगान के जो शास्त्र सिद्धान्त रचे गये वही परवर्ती काल में व्यवहार में रहे।

भरत ने संगीत को गन्धर्व पद से सम्बोधित किया है तथा 'स्वर ताल पदात्मक गान्धर्वम्' स्वर, ताल तथा पद (साहित्य) से युक्त रचना को गान्धर्व कहा। भरत ने रसों की संख्या बताते हुए कहा है कि श्रृंगार, रौद्र, वीर एवं बीभत्स ये चार प्रधान रस है। श्रृंगार की अपकृति हास्य रौद्र का कर्म करूण, वीर का अद्भुत तथा बीभत्स का दर्शन भयानक रस है।[16] किन स्वरों का किन जातियों में कम अधिक प्रयोग से विभिन्न रसों की सृष्टि होती है का वर्णन किया है। परवर्ती काल में नाटक तथा संगीत का स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ। संगीत में राग प्रचलित हुए प्रबन्ध, ध्रुपद, ख्याल, धमार, टप्पा, ठुमरी आदि समय–समय पर अनेक गायन शैलियां भी प्रचार में आयीं। लोक गीतों का भी प्रचलन समाज में बना रहा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि शब्द ब्रह्म और नाद ब्रह्म की विद्यमानता सब में व्याप्त है क्योंकि सबका

उद्देश्य रस सृष्टि करके आनन्द प्राप्त करना है। भरत ने रसों की संख्या बताते हुए कहा है कि श्रृंगार, रौद्र, वीर एवं बीभत्स ये चार प्रधान रस हैं। श्रृंगार की अनुकृति हास्य रौद्र का कर्म करूण, वीर का कर्म अद्‌भुत तथा बीभत्स का दर्शन भयानक रस है।

नाट्य की रस प्रक्रिया में सीता आदि आलम्बन विभाव पुष्पवाटिका आदि उद्दीपन विभाव, आश्रय की चेष्टा आदि का अनुभव और निर्वेद उत्सुकता इत्यादि संचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। गीत में स्वर सन्निवेश द्वारा रस प्रक्रिया होती है। इसमें स्थायी भाव आलम्बन अंश स्वर होता है जिसकी स्थायी स्वर संज्ञा होती है। स्थायी स्वर का संवादी स्वर उद्दीपन विभाव का कार्य करता है, प्रयुज्यमान अनुवादी स्वर अनुभाव का कार्य करते हैं और स्थायी स्वर को उभारते रहते हैं एवं संचारी स्वर संचारी भावों के प्रकाशक होते है। जिस प्रकार ब्राह्य प्रकृति के साहचर्य में आकर हृदय को विगलित कर देता है। ऐसी स्थिति में रस परिपाक के लिये किसी कथा या घटना की आवश्यकता नहीं होती। स्थायी स्वरों का रसों में विनियोग निम्न तालिका में दर्शाया गयाहै–

स्थायी स्वर	रस	स्थायी भाव
षड्‌ज	वीर, अद्‌भुत, रौद्र	उत्साह, विस्मय, क्रोध
ऋषभ	वीर, अद्‌भुत, रौद्र	उत्साह, विस्मय, क्रोध
गांधार	करूण	शोक
मध्यम	श्रृंगार, हास्य	रति, हास
पंचम	श्रृंगार, हास्य	रति, हास
धैवत	वीभत्स	भयानक
निषाद	करूण	शोक

जब तक स्वर स्थायी नहीं होता, तब तक वह भाव का प्रकाशक होता है, 'रस' का नहीं। उस अवस्था में उसके द्वारा अभिव्यक्त भाव 'संचारी' होता है स्थायी भाव नहीं। उस समय वह स्वरलिपि 'स्थायी भाव' पर आलम्बित स्थायी भाव का पोषण करता है। अनुभव यह सिद्ध करता है कि जिन रागों में मध्यम स्थायी स्वर होता है वे संयोग श्रृंगार और जिसमें पंचम अंश स्वर होता है वे विप्रलम्भ श्रृंगार के व्यंजक होते हैं। इसी प्रकार गांधार अंश स्वर होने पर करूणा रस की अभिव्यजना होती है। विस्तार के भय से चर्चा नहीं कर रहे हैं। संगीत में स्वर सन्निवेश के साथ लय एवं ताल की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विभिन्न वाद्य यन्त्रों का संगति एवं सहायक रूप में प्रयोग की रस परिपाक में अपनी अहम भूमिका है।

जब हम इसे सिद्धान्त की फिल्मी गीतों में प्रयोगधर्मिता पर विचार करते है तो ज्ञात होता है कि शास्त्रीय संगीत के नियमों का पालन अनेकों गीत रचनाओं में हुआ है। जैसे 'बैजू बावरा', 'बसन्त बहार', 'तानसेन', 'शबाब', 'मेरी सूरत तेरी आँखें', 'अनुराधा' आदि फिल्मों के गीतों में शास्त्रीय रागों का आधार स्पष्ट है। रागों पर आधारित इन फिल्मों के गीत बहुत लोकप्रिय हुए। आज भी मन तडपत हरि दर्शन को आज, पूछो न कैसे मैंने रैन बितायी' आदि गीत जन सामान्य की रूचि के गीत हैं। यह बात अवश्य है कि रागों पर आधारित गीतों में राग के स्वर एवं स्वरूप को तो कायम रखा लेकिन आलाप, तान आदि बारीकियों की अपेक्षा सरल धुनों का निर्माण किया गया। राग भैरवी में इसके अनेक उदाहरण है। जैसे 'दो हंसो का जोड़ा बिछड़ गयो रे', 'ऐ मेरे दिल कही ओर चल', 'बोल राधा बोल' आदि। अन्य रागों में भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं। गायन शैलियों के आधार पर कई फिल्मी गीत बने। जैसे 'फुल गेंदवा न मारो', 'लागा चुनरी में दाग' आदि गीत ठुमरी एवं दादरा गायन शैलियों पर आधारित हैं। ध्रुवपद का रूप 'सप्त सुरन तीन ग्राम' तानसेन फिल्म के इस गीत में स्पष्ट है। फिल्म स्वर्णसुंदरी में तराना का उदाहरण 'ना दिर दिर तोम तदानी' गीत है। 'मधुबन में राधिका नाचे रे' फिल्म कोहेनूर के इस गीत में चतुरंग के लक्षण घटित होते है।

कुछ प्रसिद्ध शास्त्रीय बंदिरों भी फिल्मी गीतों के रूप में प्रयुक्त हुई है। जैसे गौड मल्हार की बंदिरा 'गरजत बरसत भीजत आइला', उस्ताद अमीर खां द्वार गायी गयी प्रसिद्ध 'कैसे आऊं जमुना के तीर', 'सकल बन गगन पवन चलत पुरवाई', 'बाट चलत नयी चुनरी रंग डाली', स्वामी हरिदास की रचना 'सप्त सुरन तीन ग्राम' आदि अनेक उदाहरण हैं। ये सब रस सिद्धान्त की कसौटी पर खरे उतरते हैं। ये तो पारम्परिक बंदिशों पर आधारित है लेकिन भरत व्यास आदि गीतकारों ने नये गीत रच कर फिल्म जगत् को समृद्ध किया।[18]

लता मंगेशकर, आशा भौंसले, मुहम्मद रफी, किशोर कुमार, हेमन्त, मन्ना डे, वाणी जयराम आदि गायक फिल्मी गायक के रूप में प्रसिद्ध हैं। संगीत के अभ्यास और जानकारी तथा गीत में निहित भाव एवं रस को समझे बिना गाना संभव ही नहीं। शास्त्रीय संगीत के प्रसिद्ध गायकों ने भी फिल्मी गीतों को गाया। जैसे उस्ताद अमीर खां, श्रीमती लक्ष्मीशंकर, स्व. डी.वी पलुस्कर, सुश्री सुल्ताना, परवीन इत्यादि रस सिद्ध गायकों ने फिल्मी गीतों को अपना स्वर दिया।[19]

गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों की संगीत में सहस्थिति बतायी गयी है।

चलचित्रों में गीत में तो रस तत्व है क्योंकि वहाँ साहित्य भी है। लेकिन वाद्यों के माध्यम से भी रसाभिव्यक्ति फिल्मों में हुई है। फिल्मी गीतों में वाद्यों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया। फिल्म 'स्त्री' में 'ओ निर्दयी प्रीतम' में वीणा का प्रयोग, फिल्म कोहेनूर के 'मधुबन में राधिका नाचे रे' में तबला तरंग का प्रयोग बहुत सुंदर ढंग से हुआ है। शास्त्रीय गायकों की भान्ति प्रसद्धि वादकों ने भी फिल्मी गीतों में वाद्यवादन किया। जैसे 'गूंज उठी शहनाई' में उस्ताद बिस्मिल्ला खां की शहनाई तथा 'मेरी सूरत तेरी आंखे' फिल्म के गीत 'नाचे मन मोरा' में पंडित सामता प्रसाद (गुरई महाराज) का तबला वाद उल्लेखनीय है। पंडित रविशंकर तथा उस्ताद रईस खां ने सितार वादन किया। इन वाद्यों के प्रयोग ने जो रस संचार किया वह अविस्मरणीय है।

संगीत की विधा नृत्य ने चलचित्र संगीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भरतनाट्यम, कथक, मणिपुरी आदि जैसे शास्त्रीय नृत्यों तथा लगभग सभी प्रान्तों के लोक नृत्यों का फिल्मी गीतों की धुनों पर प्रयोग हुआ। कई गीतों पर तो अभिनय हुआ लेकिन कई गीतों पर नृत्य हुए। वैजयन्ती माता, हेमामालिनी आदि अभिनेत्रियां नृत्य में भी प्रवीण हैं। नृत्य के विभिन्न अंगहार, करण आदि तकनीकी पारिभाषिक शब्दावली का नाट्यशास्त्र में वर्णन मिलता है।[20] भाव और रस के साथ इनका सम्बन्ध है। इनकी प्रयोगधर्मिता फिल्मी गीतों में देखी जा सकती है।

इस प्रकार हमने रस सम्बन्धी संस्कृत शास्त्र ग्रन्थों का संकेत मात्र किया है क्योंकि संस्कृत शास्त्र ग्रन्थां की एक समृद्ध ज्ञान राशि उपलब्ध है तथा फिल्मी गीतों की भी संख्या बहुत है। इस दिशा में शोध करने से अनेक नवीन तथ्य उद्घाटित होंगे तथा शास्त्र ग्रन्थों में प्रतिपादित रस सिद्धान्त की प्रयोगधर्मिता का प्रकाटय होगा।

सन्दर्भ

1. विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद रसनिष्पत्ति, भरत ग.स.2, अ. 6, पृष्ठ 272
2. आचार्यबृहस्पति, भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ. 157
3. जग्राह पाठयमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च यजुर्वेदादर्भिनयान रसानार्थवणादपि, भरत, व.स. 310। पृष्ठ 2
4. तैत्तिरीय उपनिषद 2.7
5. स प्राणम्सृजत् प्राणाच्छद्धां खं वायु ज्योतिरापः पृथिवीन्दियं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कला पुरूषायणाः पुरूषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति। प्रश्ने उदेनिषद पृ.5

6. असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मानग्ग स्वयमकुरूत। तै. उप. 2.7
7. तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। यद्रै तत्सुकृसम। रसो वै सः। वही तै. उप. 2.7
8. रसग्गं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात। तै. उप. 2.7
9. एष ह्येवानन्दयाति। वही 2.7
10. सैष आनन्दस्य मीमांसा भवति। युवास्यात्साधुयुवाध्यापकः। आशिष्ठो दृढ़िष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात। स एको मानुषा आनन्दः। तै. उप. 2.8
11. ते ये शतं मनुषा आनन्दाः। स एको मनुष्य गन्धर्वाणां आनन्दः। तै. उप. 2. 8
12. ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणां आनन्दा। स एको देवगन्धर्वाणां आनन्दः। वही
13. तै. उप. 2.8
14. वही
15. ते ये शतं इन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः।
ते ये शतं बहस्पतेरानन्दाः। स एकाः प्रजापतेरानन्दः।
ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः। स एको ब्रह्मण आनन्दः
श्रोत्रियस्य च कामहतस्य। स यश्चायं पुरूषे।
यश्वासादित्ये। स एकः। तै. उपप. 2.8
16. श्रृंगाराद्धि भवेद् हास्यो रौद्राध करूणो रसः।
वीराच्चैवाद् भुतोत्पत्तिर्वीभत्साच्च भयानकः।।
श्रृंगारानुकृतियां तु स हास्यस्तु प्रकीर्तितः।
रौद्रस्यैव च यत्कर्म्म सज्ञेय करूणो रसः।।
वीरस्यापि च चत्कर्म्म सोऽद्भुतः परिकीर्तितः।
बीभत्सदर्शनं यच्च ज्ञेयः स तु भयानकः।।
भरत गा. सं 2, अ.6 पृ. 172
17. कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति, भरत का संगीत सिद्धान्त पृ. 271
18. कैलाश चन्द्र श्रीवास्तव, फिल्मी शास्त्रीय गीत अंक, जनवरी 1973, पृ.11
19. वही पृ. 12
20. नाट्य शास्त्र का संगीत विवेचन, डा. पुरू दाधीच, पृ. 63 तथा आगे, द्र, नाट्यशास्त्र 34वां तथा 35 वां अध्याय